पाठ्यक्रम - २५

२५अ जीव के परिणाम-गुणस्थान परिचय

मोह और मन-वचन-काय की प्रवृत्ति के कारण जीव के अंतरंग परिणामों में प्रतिक्षण होने वाले उतार -चढ़ाव का नाम गुणस्थान है। उनको चौदह श्रेणियों में विभाजित किया गया है। वे १४ गुणस्थान कहलाते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं -

१.	मिथ्यात्व गुणस्थान	२.	सासादन सम्यक्त्व गुणस्थान
३.	सम्यक्-मिथ्यात्व अथवा मिश्र गुणस्थान	४.	अविरत गुणस्थान
५.	देश विरत गुणस्थान	६.	प्रमत्त गुणस्थान
७.	अप्रमत्त गुणस्थान	८.	अपूर्व करण गुणस्थान
९.	अनिवृत्ति करण गुणस्थान	१०.	सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान
११.	उपशांत मोह गुणस्थान	१२.	क्षीण मोह गुणस्थान
१३.	सयोग केवली गुणस्थान	१४.	अयोग केवली गुणस्थान

इन गुणस्थानों का स्वरूप निम्न प्रकार है :-

१. मिथ्यात्व गुणस्थान - दर्शन मोहनीय कर्म की मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से जीवादि सात तत्त्व, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति अश्रद्धान रूप परिणामों को मिथ्यात्व गुणस्थान कहते हैं। धर्म के प्रति अरुचि होना, रागी-द्वेषी देव की आराधना, जीव हिंसा से युक्त धर्म में रुचि और परिग्रह में फंसे हुए को गुरु मानना, शरीर को ही आत्मा मानना इत्यादि परिणाम मिथ्यादृष्टि जीव की पहचान के बाह्य चिह्न हैं। इस गुणस्थान में एक जीव जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल एवं उत्कृष्ट से अनन्त काल तक रह सकता है।

2. सासादन गुणस्थान - अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ में से किसी एक कषाय का उदय होने से सम्यक्त्व परिणामों के छूटने पर और मिथ्यात्व प्रकृति के उदय न होने से मिथ्यात्व परिणामों के न होने पर मध्य के काल में जो परिणाम होते हैं उसे सासादन गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान का काल जघन्य से एक समय एवं उत्कृष्ट से छह आवली प्रमाण है।

3. सम्यक्त्व मिथ्यात्व गुणस्थान - जात्यन्तर सर्वघाती सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से केवल सम्यक्त्व रूप या मिथ्यात्व रूप परिणाम न होकर मिले हुए दही गुड़ के समान खटमीठा रूप मिश्र परिणाम होने से सम्यक्त्व मिथ्यात्व नाम वाला मिश्र गुणस्थान होता है। एक जीव की अपेक्षा इसका जघन्य व उत्कृष्ट काल मात्र अन्तर्मुहूर्त है इस गुणस्थान में नवीन आयु का बंध नहीं होता व मरण भी नहीं होता।

4. अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान - जहाँ मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम से सम्यग्दर्शन तो हो जाता है, परन्तु अप्रत्याख्यानादि चारित्र मोह की प्रकृतियों का उदय रहने से पाँच पाप के त्याग रूप परिणाम नहीं होते हैं। उसे अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान कहते हैं।

प्रशम, संवेग, अनुकम्पा आस्तिक्य ये सम्यग्दृष्टि की पहचान के चिह्न हैं। कोई एक जीव इस गुणस्थान में जघन्य से अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट से ३३ सागर + एक करोड़ पूर्व तक रह सकता है।

5. देशविरत गुणस्थान - अप्रत्याख्यानावरण कषाय के अनुदय (उदय न होने से) से जहाँ जीव के हिंसा आदि पाँच पापों के एकदेश त्याग रूप परिणाम होते हैं उसे देशविरत गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में त्रस हिंसा के त्याग रूप संयम एवं स्थावर हिंसा के त्याग नहीं रूप असंयम भाव होने से इसे संयमा संयम गुणस्थान भी कहते हैं। कोई एक जीव इस गुणस्थान में जघन्य से अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त कम एक करोड़ पूर्व वर्ष तक रह सकता है।

6. प्रमत्त विरत गुणस्थान - प्रत्याख्यानावरण कषाय के अनुदय से जहाँ पाँच पाप के पूर्ण त्याग रूप सकल संयम तो हो चुका है, किन्तु संज्वलन और नो कषाय का उदय रहने पर संयम में मल उत्पन्न करने वाला प्रमाद रूप परिणाम होता है, अतएव इस गुणस्थान को प्रमत्त विरत गुणस्थान कहते हैं। एक जीव इस गुणस्थान में कम से कम एक समय एवं उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त तक रह सकता है।

7. अप्रमत्त विरत गुणस्थान – जब संज्वलन कषाय और नोकषाय का मन्द उदय होता है, तब सकल संयम से युक्त मुनि के प्रमाद रूप परिणामों का अभाव हो जाता है, इसलिए इसे अप्रमत्त विरत गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान का काल जघन्य से एक समय एवं उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है।

इस गुणस्थान के आगे बढ़ने वाले साधक दो प्रकार के होते हैं :- (१) उपशामक (२) क्षपक । उपशम श्रेणी में चढ़ने वाले साधक उपशामक कहलाते हैं, चारित्र मोहनीय का उपशम करने के लिए जो श्रेणी चढ़ी जाती है उसे उपशम श्रेणी कहते हैं, इस पर चढ़ने वाला साधक नियम से ग्यारहवें गुणस्थान तक पहुँचकर फिर नीचे के गुणस्थानों में गिर जाता है। उपशम का अर्थ दबाना होता है जैसे धूल कण मिश्रित जल के शांत होने पर उसके कण नीचे बैठ जाते हैं। क्षपक श्रेणी में चढ़ने वाले साधक क्षपक कहलाते हैं, जिसमें चारित्र मोह का क्षय होता है उसको क्षपक श्रेणी कहते हैं, इस श्रेणी पर चढ़ने वाला साधक दसवें गुणस्थान से सीधे बारहवें गुणस्थान में पहुंच जाता है। वह कर्मों का क्षय करता हुआ केवलज्ञान उत्पन्न कर लेता है।

गुणस्थानों में आने-जाने का क्रम

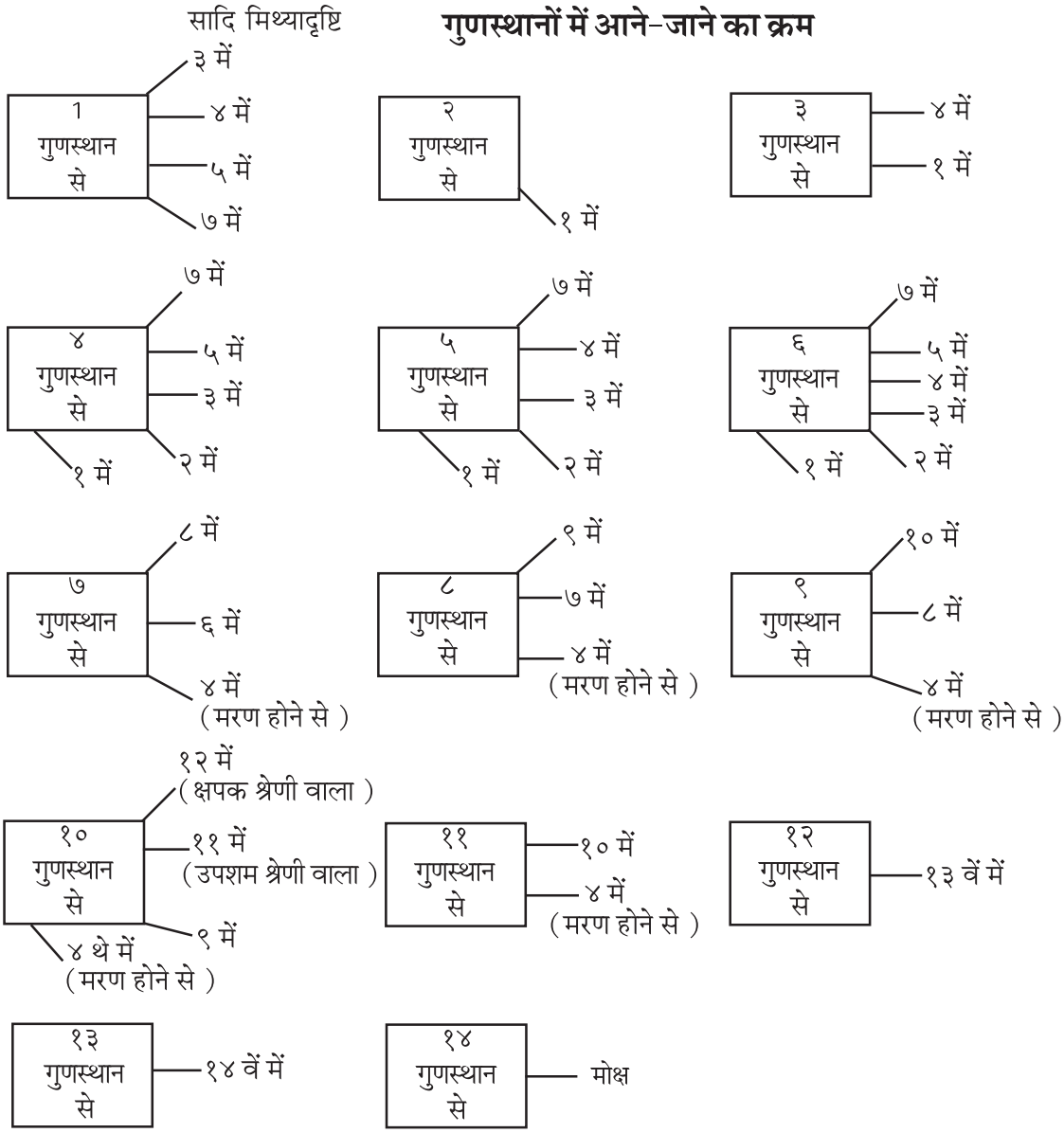

8. अपूर्वकरण गुणस्थान – जो परिणाम पहिले समय में नहीं थे ऐसे नवीन परिणाम जहाँ होते हैं उसे अपूर्वकरण गुणस्थान कहते हैं। यहाँ सम-समयवर्ती अनेक जीवों के परिणाम समान और असमान दोनों प्रकार के तथा भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम असमान ही होते हैं। यहाँ मोहनीय कर्म के उपशम एवं क्षय की भूमिका बनती है।

9. अनिर्वृत्ति करण गुणस्थान – जहाँ समान समयवर्ती जीवों में परिणामों में भेद नहीं पाया जाता है परन्तु भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणामों में सर्वथा भेद ही पाया जाता है। इसे अनिर्वृत्ति करण गुणस्थान कहते हैं। यहाँ उपशम क्षय का कार्य प्रारंभ होता है।

10. सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान – साम्पराय का अर्थ कषाय, जहाँ सूक्ष्मता को प्राप्त संज्वलन लोभ कषाय का ही उदय पाया जाए उसे सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान कहते हैं।

11. उपशांत मोह गुणस्थान – सम्पूर्ण मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले, निर्मल परिणामों को उपशान्त मोह गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान का धारक जीव अन्तर्मुहूर्त की भीतर आयु क्षय अथवा (गुणस्थान के) काल क्षय के कारण नियम से नीचे के गुणस्थान में पतित होता है।

12. क्षीण मोह गुणस्थान – मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय हो जाने से जहाँ आत्मा के परिणाम स्फटिक मणि के स्वच्छ पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल होते हैं, उसे क्षीण मोह गुणस्थान कहते हैं।

13. सयोग केवली गुणस्थान – जहाँ घातिया कर्मों की ४६, नामकर्म की ६३ प्रकृतियों के क्षय से केवलज्ञान प्राप्त होता है तथा योग सहित प्रवृत्ति होती है, उसे सयोग केवली गुणस्थान कहते हैं।

14. अयोग केवली गुणस्थान – जहाँ मन, वचन, काय इन तीनों योगों का सर्वथा अभाव हो जाता है, उसे अयोग केवली गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान का काल ''अ इ उ ऋ लृ'' इन पाँच लघु अक्षर के उच्चारण काल के बराबर है।

० आठवें से बारहवें तक के गुणस्थान में प्रत्येक का काल अन्तर्मूहूर्त होता है। तेरहवें गुणस्थान का जघन्य काल अन्तर्मूहूर्त एवं उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मूहूर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष होता है।

० संसार में कोई भी जीव गुणस्थान से रहित नहीं होता है अत: पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, पेड़-पौधे, द्वि इन्द्रिय आदि विकलत्रय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अभव्य जीव इनको प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान होता है।

० देशव्रती श्रावक (१ से १० प्रतिमाधारी), छुल्लक एलक (११ प्रतिमाधारी) एवं आर्यिका माताओं का पञ्चम संयमासंयम गुणस्थान होता है।

० इस पंचम काल में महाव्रती (मुनिराज) का छटवाँ-सातवाँ गुणस्थान होता है एवं उसी भव में मोक्ष जाने वाले मुनियों को ऊपर के गुणस्थान (८ से १४ तक) भी हो सकते हैं।

० नारकी जीवों में १ से ४ तक गुणस्थान होते हैं, तिर्यञ्च (संज्ञी पञ्चेन्द्रिय) में १ से ५ तक, मनुष्यों में १ से १४ तक तथा देवों में १ से ४ तक गुणस्थान होते हैं। भोगभूमिज तिर्यञ्चों व मनुष्यों के १ से ४ ही गुणस्थान होते हैं।

अद्वितीय रचना - सिरिभूवलय - ग्रन्थ

आचार्य श्री कुमुदेन्दु (९ वीं सदी) द्वारा रचित सिरि भूवलय अद्भुत ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में १८ महाभाषाएँ एवं ७०० लघु भाषाएँ गर्भित हैं। अंक राशि से निर्मित यह ग्रन्थ अद्वितीय सिद्धान्तों पर आधारित है। विज्ञान का भी यह अभूतपूर्व ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ में बड़ा वैचित्र्य है, इसमें २७ पंक्ति (लाइनें) और २७ स्तम्भ (कॉलम) में ७२९ खाने युक्त कई टेबल हैं। खानों में १ से ६४ तक अंकों का प्रयोग किया गया है, अंकों से ही अलग-अलग अक्षर बनते हैं। इन अक्षरों से इस ग्रन्थ के पढ़ने के कई सूत्र हैं, उन्हें बंध कहा जाता है। बन्धों के अलग-अलग नाम हैं जैसे चक्रबंध, हंसबंध, पद्म बंध, मयूर बंध आदि। बंध खोलने की विधि का जानकार ही इस ग्रन्थ का वाचन कर सकता है।

इसके एक-एक अध्याय के श्लोकों को अलग-अलग रीति से पढ़ने पर अलग-अलग ग्रन्थ निकलते हैं। इसमें ऋषिमण्डल, स्वयम्भू स्तोत्र, पात्रकेशरी स्तोत्र, कल्याण कारक, हरिगीता, जयभगवद् गीता, प्राकृत भगवत् गीता, संस्कृत भगवत् गीता, कर्नाटक भगवत् गीता, गीर्वाण भगवद् गीता, जयाख्यान महाभारत आदि के अंश गर्भित होने की सूचना तो है ही साथ ही अब तक अनुपलब्ध स्वामी समन्तभद्राचार्य विरचित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ गन्ध हस्ति महाभाष्य के गर्भित होने की भी सूचना है। इसमें ऋग्वेद, जम्बूद्वीप पण्णत्ति, तिलोयपण्णत्ती, सूर्य प्रज्ञप्ति, समयसार, पुष्पायुर्वेद एवं स्वर्ण बनाने की विधी आदि अनेक विषय वर्णित हैं। भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि जैसे विभिन्न भाषा भाषियों को अपनी-अपनी भाषा में सुनाई देती थी, ठीक वही सिद्धान्त इसमें अपनाया गया है। जिससे एक ही अंकचक्र को अलग-अलग तरह से पढ़ने पर अलग-अलग भाषाओं के ग्रन्थ और विषय निकलते हैं।

इस ग्रन्थ का परिचय जब भारत के तात्कालीन राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद जी को दिया गया तो उन्होंने इसको संसार का आठवाँ आश्चर्य बताया और राष्ट्रीय महत्त्व का कहकर इसकी पाण्डुलिपि राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित करवाई।

इस सिरिभूवलय ग्रन्थ पर अनुसंधान कार्य जारी है। अनेक साधु एवं संस्थान इस कार्य में लगे हुए हैं। खोज स्वरूप अनेक चौंकाने वाले तथ्य प्रकाश में आएँगे।

पाठ्यक्रम - २५

२५ब श्रेष्ठ आध्यात्मिक ग्रन्थ - श्री समयसार

आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी (ईसा सन् की द्वितीय शताब्दी) दिगम्बर साहित्य के महान प्रणेता थे। यह समयसार ग्रन्थ आपकी सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक कृति है। यहाँ समय शब्द के दो अर्थ विवक्षित हैं- समस्त पदार्थ और आत्मा। जिस ग्रन्थ में समस्त पदार्थों अथवा आत्मा का सार वर्णित हो, वह समयसार है। यह ग्रन्थ दश अधिकारों में विभक्त है-

१. जीवाधिकार २. कर्ताकर्म अधिकार ३. पुण्य-पाप अधिकार ४. आस्रव अधिकार
५. संवर अधिकार ६. निर्जरा अधिकार ७. बन्ध अधिकार ८. मोक्ष अधिकार
९. सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार १०. स्याद्वाद अधिकार

प्रथम जीवाधिकार में स्व-समय, पर-समय, शुद्धनय, आत्मभावना और सम्यकत्व का प्ररूपण है। जीव को कामभोग विषयक बन्धकथा ही सुलभ है। किन्तु आत्मा का एकत्व दुर्लभ है। एकत्व-विभक्त आत्मा को निजानुभूति द्वारा ही जाना जाता है। जीव प्रमत्त, अप्रमत्त दोनों दशाओं से पृथक् ज्ञायकभावमात्र है। ज्ञानी के दर्शन, ज्ञान, चारित्र व्यवहार से कहे जाते हैं, निश्चय से नहीं। निश्चय से ज्ञानी एक शुद्ध ज्ञायकमात्र ही है। इस अधिकार में व्यवहार नय को अभूतार्थ और निश्चय को भूतार्थ कहा है।

दूसरे कर्ताकर्माधिकार में आस्रव, बन्ध आदि की पर्यायों का विवेचन किया गया है। आत्मा के मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति ये तीन परिणाम अनादि से हैं। जब इन तीन प्रकार के परिणामों का कर्तृत्व होता है, तब पुद्गलद्रव्य स्वयं कर्मरूप परिणमन करता है। परद्रव्य के भाव का जीव कभी भी कर्ता नहीं होता है।

तीसरे पुण्य-पाप अधिकार में शुभाशुभ कर्मस्वभाव वर्णित है। अज्ञानपूर्वक किए गए व्रत, नियम,शील और तप मोक्ष के कारण नहीं हैं। जीवादि पदार्थों का श्रद्धान, उनका अधिगम और रागादि भाव का त्याग मोक्ष का मार्ग बतलाया है।

चौथे आस्रवाधिकार में मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और कषाय आस्रव बतलाए गए हैं। वस्तुत: राग, द्वेष, मोहरूप परिणाम ही आस्रव हैं। ज्ञानी के आस्रव का अभाव रहता है। अत: राग-द्वेष-मोहरूप परिणाम के उत्पन्न न होने से आस्रव प्रत्ययों का अभाव कहा जाता है।

पाँचवें संवर अधिकार में संवर का मूल भेदविज्ञान बताया है। इस अधिकार में संवर के क्रम का भी वर्णन है।

छटवें निर्जरा अधिकार में द्रव्य, भावरूप निर्जरा का विस्तारपूर्वक निरूपण किया है। ज्ञानी व्यक्ति कर्मों के बीच रहने पर भी कर्मों से लिप्त नहीं होता है, पर अज्ञानी कर्म रज से लिप्त रहता है।

सातवें बन्धाधिकार में बन्ध के कारण रागादि का विवेचन किया है।

आठवें मोक्षाधिकार में मोक्ष का स्वरूप और नौवें सर्व विशुद्ध ज्ञानाधिकार में आत्मा को विशुद्ध ज्ञान की दृष्टि से अकर्तृत्व आदि सिद्ध किया है।

अन्तिम दशम अधिकार में स्याद्वाद की दृष्टि से आत्मस्वरूप का विवेचन किया है। इस ग्रंथ में आचार्य अमृतचन्द्र जी का टीकानुसार ४१५ गाथाएँ और जयसेनाचार्य जी की टीका के अनुसार ४३९ गाथाएँ हैं। शुद्ध आत्मा का इतना सुन्दर और व्यवस्थित विवेचन अन्यत्र दुर्लभ है।

भरत चक्रवर्ती और भारत देश

हमारे देश का भारत नाम सबसे प्राचीन है और भारतीय संविधान में भी इसी बात को स्वीकार किया गया है।
इस नाम का संबंध ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र महान चक्रवर्ती सम्राट भरत से है। इस बात के अनेक प्रमाण हैं। इसी बात का समर्थन करते हुए अन्य वैदिक शास्त्रों शारदीयाख्य नाममाला १४७, शिवपुराण ३७/५७, लिंगपुराण ४७/१९-२३, स्कन्ध पुराण कौमार्यखण्ड ३७/५७, ब्रह्माण्डपुराण २/१४, मत्स्यपुराण ११४/५-६ आदि में भी भरत के नाम से भारतवर्ष नामकरण का उल्लेख मिलता है।

पाठ्यक्रम - २५

२५स आत्मा का स्वरूप-नय विवक्षा से

चेतना लक्षण वाले जीव का व्याख्यान नौ अधिकारों के माध्यम से किया गया है वे इस प्रकार हैं :-

1. जीव, 2. उपयोगमय, 3. अमूर्तिक, 4. कर्त्ता, 5. भोक्ता
6. स्वदेह परिमाण वाला, 7. संसार में स्थित, 8. सिद्ध, 9. स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला।

1. जीव :- व्यवहार नय से तीन कालों में जो इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छवास इन चार प्राणों के द्वारा जीता था, जीता है, जीवेगा तथा निश्चय नय से जिसके चेतना पाई जावे वह जीव है।

2. उपयोगमय :- जो परिणाम आत्मा के चैतन्य गुण का अनुसरण करता है अर्थात चैतन्य को छोड़कर अन्यत्र नहीं रहता 'उपयोग' कहलाता है। उपयोग दो प्रकार का है :-

(1) ज्ञानोपयोग, (2) दर्शनोपयोग।

ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है जिनके नाम कुमति ज्ञानोपयोग, कुश्रुत ज्ञानोपयोग, कुअवधि ज्ञानोपयोग, मति ज्ञानोपयोग, श्रुत ज्ञानोपयोग, अवधि ज्ञानोपयोग, मन:पर्यय ज्ञानोपयोग तथा केवल ज्ञानोपयोग है। दर्शनोपयोग चार प्रकार है :- चक्षु दर्शनोपयोग, अचक्षु दर्शनोपयोग, अवधि दर्शनोपयोग, केवल दर्शनोपयोग।

कुमति आदि ज्ञानों के साथ प्रयुक्त आत्मा का परिणाम कुमति आदि ज्ञानोपयोग कहलाता है इसे साकार उपयोग भी कहते हैं। तथा चक्षु आदि इन्द्रियों से होने वाले ज्ञान के पूर्व जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे दर्शनोपयोग कहते हैं, इसे निराकार उपयोग भी कहा जाता है। छद्मस्थ जीवों के (केवलज्ञान उत्पन्न होने के पूर्व की दशा) पहले दर्शनोपयोग तत्पश्चात ज्ञानोपयोग होता है। किन्तु केवलज्ञानी जीवों के दोनों उपयोग एक साथ (युगपत्) होते हैं।

आत्मा का उपयोग रूप परिणाम अशुभ, शुभ और शुद्ध के भेद से तीन प्रकार का भी है। विषय-कषायों में मग्न, कुमति, कुविचार और कुसंगति में लगा, उग्र तथा उन्मार्ग में लगा हुआ उपयोग ''अशुभोपयोग'' है। देव गुरु शास्त्र की पूजा, दया, दान आदि कार्यों में, उपवास आदिको में लीन शुभ परिणाम ''शुभोपयोग'' है। शुभ अशुभ दोनों ही क्रियाओं में इष्ट-अनिष्ट की बुद्धि से रहित एक-मात्र आत्म तत्त्व में लीन उपयोग ''शुद्धोपयोग'' कहलाता है। मिथ्या दृष्टि, सासादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानों में ऊपर-ऊपर मन्दता से अशुभोपयोग रहता है। इसके आगे असंयत सम्यक्त्व देश संयत तथा प्रमत्त संयत इन तीन गुणस्थानों में परम्परा से शुद्धोपयोग का साधक ऊपर-ऊपर तारतम्य से शुभोपयोग रहता है। तदनन्तर अप्रमत्तादि क्षीण कषाय तक 6 गुणस्थानों में जघन्य, मध्यम एवं उत्कृष्ट के भेद से विवक्षित एक देश शुद्धनय रूप शुद्धोपयोग रहता है (वर्तता है)

यह उपयोग एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक के सभी जीवों में हीनाधिक रूप से नियम से पाया जाता है कोई भी जीव उपयोग से रहित नहीं है।

3. अमूर्तिक :- निश्चय से जीव में पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श नहीं हैं इसलिए वह अमूर्तिक है। किन्तु

इन्द्रिय सुख का बहुमान है या अतीन्द्रिय सुख का?

अतीन्द्रिय सुख से अपरिचित यह जीव पौद्गलिक जड़ पदार्थों में, अपने से भिन्न पर पदार्थों में ही सुख की खोज करता रहा जबकि पुद्गल से किंचित मात्र भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है क्योंकि सुख पुद्गल का स्वभाव नहीं। सुख का आगार तो अनंत चतुष्टय सहित यह चैतन्य आत्मा है लेकिन हमें आत्मिक सुख का तो बहुमान नहीं है, इन्द्रिय सुख का बहुमान है। अत: घर पर इन्द्रिय सुख के लिए २० हजार का वीसीआर, फ्रिज, कूलर खरीदता है। लेकिन धर्म के लिए एक पुस्तक नहीं खरीदता। सोचता है कि मंदिर से लेकर पढ़ लेंगे।

अत: इन्द्रियों के द्वारा विषय कूप में पढ़कर विषयों को ही सर्वस्व समझकर अपनी वास्तविक निधि भूल गया। पर जिसे आत्मिक सुख का बहुमान है वह क्या विचार करते हैं कि मैं कब वह दिन पाऊँगा तब अपने को अपने में अपने से अभिन्न देखता हुआ पर दृष्टि का त्याग कर अपने में लीन हो जाऊँ।

कब धन्य सुअवसर पाऊँ जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद हटाऊँ, रागादि दूर भगाऊँ॥

व्यवहार नय से कर्मबन्ध की अपेक्षा जीव मूर्तिक है।

4. कर्ता :- आत्मा व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्ता है। इसमें भी उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से अपने से पृथक मकान भोजनादि का कर्ता है तथा अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से शरीरादि नो कर्म एवं ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्ता है। अशुद्ध निश्चय नय से राग-द्वेष रूप भाव कर्मों का जीव कर्ता है एवं शुद्ध निश्चय नय से केवलज्ञान, अनन्तसुख रूप शुद्ध भावों का कर्ता है।

5. भोक्ता :- आत्मा उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से अपने से पृथक् स्त्री, मकान, आम्र आदि फलों का भोक्ता है। अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से जीव सुख-दुःख रूप कर्म फलों का भोक्ता है। तथा शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध ज्ञान दर्शन का ही भोक्ता है।

6. स्वदेह परिमाण :- आत्मा व्यवहार नय से समुद्घात को छोड़कर अन्य अवस्थाओं में संकोच-विस्तार के कारण छोटे -बड़े शरीर के बराबर प्रमाण को धारण करने वाला है तथा निश्चय नय से जीव असंख्यात प्रदेशी है।

समुद्घात - मूल शरीर को छोड़े बिना आत्मा के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात कहलाता है। समुद्घात सात प्रकार का होता है :- 1. वेदना, 2. कषाय, 3. वैक्रियिक, 4. मारणान्तिक, 5. तैजस, 6. आहारक, 7. केवलि समुद्घात।

7. संसारस्थ :- पृथ्वी कायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक ये स्थावर जीव हैं। तथा शंखादि दो, तीन, चार, पञ्चेन्द्रिय जीव त्रस हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च भी संज्ञी-असंज्ञी के भेद से दो प्रकार के हैं। व्यवहार नय से जीव संसार की इन पर्यायों में रहता है अतः संसारस्थ है। शुद्ध निश्चय नय से सभी संसारी जीव सिद्धों के समान शुद्ध हैं।

8. सिद्ध :- जीव स्वभाव से आठ कर्मों से रहित, आठ गुणों से सहित, अन्तिम शरीर से कुछ कम प्रमाण वाला, उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त, लोक के अग्रभाग में स्थित होने वाला सिद्ध है।

9. ऊर्ध्वगमन स्वामी :- जैसे दीपक की शिखा स्वभाव से ही ऊपर की ओर जाती है, वैसे शुद्ध दशा में जीव भी उर्ध्वगमन स्वभाव वाला होता है। धर्म द्रव्य का अभाव होने पर वह लोक के बाहर न जाकर लोकाग्र पर ही अवस्थित हो जाता है।

हे मेरे गुरुवर इक बात बताओ।
कहाँ है भगवन हमें दिखाओ।
ओऽऽऽ मैंने तो उनको कहीं देखा नहीं।
कहीं मेरे भगवन गुरुवर तुम्हीं तो नहीं।
मैंने सुना है मन-मन में भगवान विराजे रहते हैं।
अंतः मन से झांको तो वह हमें दिखाई देते हैं ।
मेरे तो मन में गुरुवर तुम्हीं हो बसे ।
कहीं मेरे .....
तेरा रूप ये देख गुरुवर, कुछ- कुछ ऐसा लगता है।
मंदिर में भगवान की मूरत से भी कुछ-कुछ मिलता है ।
सच-सच बताना गुरुवर, छिपाना नहीं ।
कहीं मेरे .....

आसरा इस जहाँ में मिले न मिले,-२
मुझको तेरा सहारा सदा चाहिए।
चाँद-तारे फलक पर दिखे न दिखे,-२
मुझको तेरा नजारा सदा चाहिए॥
यहाँ खुशियाँ हैं कम और ज्यादा हैं गम,
जहाँ देखो वहाँ भरम ही भरम।
मेरी महफिल में शमा जले न जले,-२
मेरे मन में उजाला तेरा चाहिए॥
कभी वैराग्य है तो कभी अनुराग है,
जहाँ बदलते हैं माली वही बाग है।
मेरी चाहत की दुनिया बसे न बसे-२
मेरे मन में बसेरा तेरा चाहिए॥
मेरी धीमी है चाल और पथ है विशाल,
हर कदम पर मुसीबत है अब तो संभाल।
पैर मेरे थके ये चलें न चलें,-२
मेरे मन में इशारा तेरा चाहिए॥
आसरा इस ....॥

हेय उपादेय तत्त्व

जैसे सब्जी की दुकान पर सब्जी खरीदने जाते हैं तो जो सब्जी सड़ी हो, खराब हो, उसे नहीं खरीदते लेकिन जो सब्जी भक्ष्य होती है, ताजी होती है उसे ही खरीदते हैं। ठीक इसी प्रकार जीवादि सात तत्त्वों में कौन से तत्त्व हेय हैं कौन से तत्त्व उपादेय हैं ये जानना जरूरी है और हेय तत्त्व को छोड़ना और उपादेय तत्त्व को ग्रहण करना चाहिए।

हेय तत्त्व : आस्रव बंध **उपादेय तत्त्व** : जीव, संवर निर्जरा
ज्ञेय तत्त्व : अजीव **ध्येय तत्त्व** : मोक्ष

सम्मेदशिखर वंदना

दोहा

सम्मेद शिखर वन्दूँ सदा, भाव सहित नत भाल।
कहूँ वन्दना क्षेत्र की, पाने शिव की चाल।।

चौपाई

प्रथम कूट है गौतम स्वामी, वन्दों गणधर पद जगनामी।
चौबीसों के परम गणीशा, चौदह सौ बावन श्री ईशा।। 1।।
कूट ज्ञानधर कुन्थु जिनंदा, वन्दूँ मन वच मेटो फँदा।
बहुत निकट हैं पूर्ण दयालू, हो जाऊँ मैं परम कृपालू।। 2।।
नमि जिनवर जी जग के चंदा, कूट मित्रधर सुख आनंदा।
तीन लोक के सभी जीव जी, बने मित्र मम मिटे पीव जी।। 3।।
नाटक तजकर अर जिनस्वामी, नाटक वन्दूँ शिवपथ गामी।
चक्रवर्ति का चक्कर छोड़ा, हमने तुमसे नाता जोड़ा।। 4।।
मल्लिप्रभु का कूट सुसंबल, बसो हृदय में मेरे पल-पल।
बाल ब्रह्म-मय विरत विरागी, बना रहूँ मैं तुम पद रागी।। 5।।
सुरनर किन्नर संकुल पूजें, वन्दत श्रेयनाथ अघ धूजे।
समवशरण में ऐसे सोहे, नखतों में ज्यों चंदा मोहे।। 6।।
सुप्रभ से श्री सुविधिनाथजी, वन्दूँ देना नित्य साथजी।
धवल वर्ण के चरण तुम्हारे, धवल भाव हो नाथ हमारे।। 7।।
पद्मप्रभ का मोहन कूटा, माना जग में शिव का खूँटा।
मोह नाश कर शिव महि पाई, वंदूँ तुमको नित शिर नाई।। 8।।
मुनिसुव्रत का कूट सुनिर्झर, वन्दत होते अघ भी झर-झर।
मुनियों में तुम श्रेष्ठ मुनी हो, चरणा नमते श्रेष्ठ गुणी औ।। 9।।
चंद्रप्रभ का ललित सुहाना, वन्दूँ देना शिव का दाना।
इसी कूट से असंख्यात भी, साधु गए शिव कर्म घात ही।। 10।।
कैलाशं से आदि जिनेश्वर, वन्दूँ निशदिन हे परमेश्वर।
सहस मुनीश्वर बाहुबली भी, मोक्ष गए इह आत्म बली जी।। 11।।
शीतल जिनवर विद्युतवर से, पूजक को ये इच्छित वर दें।
पाप-ताप को शीतल करके, भक्ति से हम उर में धर लें।। 12।।
स्वयंप्रभा के नाथ अनंता, वन्दूँ मेटो दुख के कंता।
नमः सिद्ध कह दीक्षा लीनी, भव्यों को शिव शिक्षा दीनी।। 13।।
संभव शम सुख पाने हेतु, वन्दूँ धवल कूट वृष केतू।
तीनों रत्नों को पा तीजे, पहुँचे शिव में सब अघ छीजे।। 14।।
चंपापुर से वासुपूज्य है, मन-वच-तन से करूँ पूज मैं।
पंचकल्याणक गिरि मंदारा, पाये पाँच युगल इह सारा।। 15।।
अभिनंदन जी आनंद दाता, आनंद कूटा बहु विख्याता।
सर्व गुणों का नंदन करने, आये हम सब वंदन करने।। 16।।
सुदत्तकूट है नाथ धर्म का, कारण है यह मोक्ष शर्म का।
धर्म पुण्य को करलो भाई, वंदत ही सब अघ नश जाई।। 17।।
सुमतिनाथ जी अविचल कूटा, गए मोक्ष ये जग से छूटा।
श्रेष्ठमती दो हमको जेष्ठा, सुर-नर वंदित वन्दूँ श्रेष्ठा।। 18।।
शांति प्रभ है शांति जिनेशा, वन्दूँ तुमको हे तीर्थेशा।
कुन्दप्रभ दूजा नामा, नमते बनते सार्थक कामा।। 19।।
पावापुर से श्री महावीरा, वर्द्धमान हो सन्मति धीरा।
पद्म सरोवर शिव का थाना, वन्दूँ सुख का द्वारा माना।। 20।।
सुपार्श्वनाथ का कूट प्रभासा, चमके सूरज सम है खासा।
रोग मिटाती इसकी धूली, वन्दूँ, पाने शिव की चूली।।२१।।
सुवीर कूट श्री विमल प्रधाना, वन्दूँ मन में धरि-धरि ध्याना।
चरण-शरण के बिन ही नाथा, भटका कर दो आज सनाथा।।२२।।
चढ़ते-चढ़ते घाटी उच्च, हाँफ गया हूँ प्रभुवर सच्च।
सिद्धिवरा है कूट अजीतं, वन्दूँ गाऊँ तुमरे गीतं।।२३।।
ऊर्जयन्त है श्री गिरनारी, पाई तप बल से शिवनारी।
कारण हुण्डासर्पण काल, वन्दूँ नेमि जिनेश्वर चाल।।२४।।
स्वर्ण भद्र है कूट प्रसिद्धा, पार्श्वनाथ का मानों सिद्धा।
वंदन होती पूर्ण यहाँ है, चरण गुफा में श्रेष्ठ तहाँ है।।२५।।
एक बार भी करलो वंदन, मिट जावे फिर भव के बंधन।
तीन काल में तीन योग से, वन्दूँ चरणा नित्य धोक दे।।२६।।
विवेक सूरि की शिष्या पंचम, भव को तज गति पाने पंचम।
बार-बार ये विनती करके, फिर-फिर वन्दें उर में धरके ।।२७।।

छंद-ज्ञानोदय

अकलंकं ने सौंदा मठ में, जिनशासन की रक्षा की।
बौद्धमती से वाद जीतकर, जैनधर्म की शिक्षा दी।।
यहीं हुई यह सिद्धक्षेत्र की पूर्ण वंदना प्यारी है।
पढ़ो-सुनो हे भव्य जनो, यदि चाहो सुख की क्यारी है।।२८।।
माघ शुक्ल की पंचमी, सूर्यवार इकतीस।
वीर मोक्ष पच्चीस सौ, पूर्ण हुई थुति ईश।।२९।।

कुण्डलपुर में आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के पास एक सज्जन आये और वे कहने लगे कि महाराज यह पुस्तक कीमती है (लगभग ३००/-) जो आपको पढ़ने के लिए लाए हैं। इस पुस्तक को आप अवश्य पढ़ियेगा।

आचार्य श्री ने कहा कि इस पुस्तक से कीमती हमारा समय है। इस पुस्तक से कीमती हम अपना समय खर्च नहीं कर सकते।

तत्त्वार्थ सूत्र

अथ पंचमोऽध्यायः

अजीवकाया, धर्मा-धर्मा-काश, पुद्गलाः ॥१॥ द्रव्याणि ॥२॥ जीवाश्च ॥३॥ नित्या-वस्थिान्य-,रूपाणि ॥४॥ रूपिणः, पुद्गलाः ॥५॥ आ आकाशा-,देकद्रव्याणि ॥६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥ असंख्येयाः, प्रदेशा, धर्माधर्मैक,जीवानाम् ॥८॥ आकाशस्यानन्ताः ॥९॥ संख्येयाऽ-,संख्येयाश्च, पुद्गलानाम् ॥१०॥ नाणोः ॥११॥ लोकाकाशेऽव-गाहः ॥१२॥ धर्मा- धर्मयोः, कृत्स्ने ॥१३॥ एक-प्रदेशादिषु, भाज्यः, पुद्गलानाम् ॥१४॥ असंख्येय भागादिषु, जीवानाम् ॥१५॥ प्रदेश, संहार विसर्पाभ्यां, प्रदीपवत् ॥१६॥ गति, स्थित्युप-ग्रहौ, धर्माधर्मयो-, रुपकारः ॥१७॥ आकाशस्याव-गाहः ॥१८॥ शरीर-वाङ्मनः, प्राणापानाः, पुद्गलानाम् ॥१९॥ सुख दुःख जीवित, मरणोप-ग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परोप-ग्रहो, जीवानाम् ॥२१॥ वर्तना, परिणाम-क्रियाः परत्वा-परत्वे च, कालस्य ॥२२॥ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः, पुद्गलाः ॥२३॥ शब्द - बन्ध - सौक्ष्म्य - स्थौल्य - संस्थान - भेद-तमश्छायाऽऽ-, तपो-द्योतवन्तश्च ॥२४॥ अणवः, स्कन्धाश्च ॥२५॥ भेद संघातेभ्य, उत्पद्यन्ते ॥२६॥ भेदा-दणुः ॥२७॥ भेद-संघाताभ्यां, चाक्षुषः ॥२८॥ सद्-,द्रव्य लक्षणम् ॥२९॥ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं, सत् ॥३०॥ तद्-भावाव्यव्ययं, नित्यम् ॥३१॥ अर्पिता-नर्पित, सिद्धेः ॥३२॥ स्निग्ध रूक्षत्वाद्-, बन्धः ॥३३॥ न, जघन्य गुणानाम् ॥३४॥ गुण साम्ये, सदृशानाम् ॥३५॥ द्व्यधिकादि, गुणानां तु ॥३६॥ बन्धेऽधिकौ, पारिणामिकौ च ॥३७॥ गुण-पर्ययवद्, द्रव्यम् ॥३८॥ कालश्-च ॥३९॥ सोऽनन्त, समयः ॥४०॥ द्रव्याश्रया, निर्गुणाः, गुणाः ॥४१॥ तद्-भावः परिणामः ॥४२॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

काय वाङ्मनः, कर्मयोगः ॥१॥ स, आस्रवः ॥२॥ शुभः पुण्यस्या-, शुभः पापस्य ॥३॥ सकषाया-कषाययोः, साम्परायि-,केर्यापथयोः ॥४॥ इन्द्रिय कषाया-,व्रत-क्रियाः, पञ्च-चतुः पञ्च, पञ्चविंशति संख्याः, पूर्वस्य भेदाः ॥५॥ तीव्र-मन्द, ज्ञाताज्ञात-,भावाधिकरण, वीर्य- विशेषेभ्यस्-तद्-विशेषः ॥६॥ अधिकरणं, जीवाजीवाः ॥७॥ आद्यं, संरम्भ - समारम्भारम्भ योग, कृत कारितानुमत, कषाय-विशेषैस्-,त्रिस्-त्रिस्-त्रिश-,चतुश-चैकशः ॥८॥ निर्वर्तना निक्षेप, संयोग- निसर्गा, द्विचतु-र्द्वि, त्रि भेदाः, परम् ॥९॥ तत् प्रदोष - निह्नव, मात्सर्यान्तराया-, सादनोपघाता, ज्ञान-दर्शनावरणयोः ॥१०॥ दुःख शोक, तापाक्रन्दन, वध परिदेव-, नान्यात्म, परोभय-स्थानान्य-,सद्वेद्यस्य ॥११॥ भूत व्रत्यनुकम्पा दान, सरागसंयमादियोगः, क्षान्तिः शौच-मिति, सद्वेद्यस्य ॥१२॥ केवलिश्रुत, संघ धर्म देवावर्णवादो, दर्शनमोहस्य ॥१३॥ कषायोदयात्,तीव्र -परिणामश-, चारित्रमोहस्य ॥१४॥ बह्वारम्भ, परिग्रहत्वं, नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया, तैर्यग्-, योनस्य ॥१६॥ अल्पारम्भ, परिग्रहत्वं, मानुषस्य ॥१७॥ स्वभाव, मार्दवं च ॥१८॥ निश्शील, व्रतत्वं च, सर्वेषाम् ॥१९॥ सरागसंयम, संयमासंयमा-, कामनिर्जरा, बालतपांसि, दैवस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥ योगवक्रता, विसंवादनं चाशुभस्य, नाम्नः ॥२२॥ तद्-विपरीतं, शुभस्य ॥२३॥ दर्शनविशुद्धि-, र्विनयसंपन्नता, शीलव्रतेष्व-नतिचारोऽ, भीक्ष्ण ज्ञानोपयोग संवेगौ, शक्तितस्- त्याग तपसी, साधुसमाधि-, वैंयावृत्त्यकरण-, मर्हदाचार्य, बहुश्रुत प्रवचनभक्ति-, रावश्यका- परिहाणि-, मार्गप्रभावना, प्रवचनवत्सलत्व-मिति, तीर्थकरत्वस्य ॥२४॥ परात्म-निन्दा-प्रशंसे, सद-,सद्गुणोच्-छादनोद्-,भावने च, नीचै-र्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्-विपर्ययो, नीचै-र्वृत्त्यनुत्सेकौ, चोत्तरस्य ॥२६॥ विघ्नकरण- मन्तरायस्य ॥२७॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

संस्मरण - ऊँचाइयों को पाने वाला हर इन्सान पहले नीचे के धरातल पर रहता है। जिस प्रकार सरोवर में खिलने वाला कमल पहले सरोवर के दल-दल में अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है। फिर कहीं जाकर जल की सतह पर अपनी शोभा फैलाता है।

बात उस समय की है जब बालक विद्याधर ने प्रथम कक्षा में स्कूल में जाना प्रारम्भ किया। उस समय उनके बैग में मात्र एक स्लेट एवं पेन्सिल थी। स्कूल में उन्होंने अ, आ बनाना सीखा। दिन भर में सीखकर अपनी स्लेट एक तरफ अ से तथा दूसरी तरफ आ से भरकर अपने घर वापस आए। घर आने पर माँ ने पूछा - आ गये बेटा स्कूल से! हाँ...माँ...आ गया, विद्या ने जवाब दिया। माँ-क्या सीखा?...विद्या-स्लेट दिखाते हुये कहा - अ और आ बनाना सीखा। छोटे से बड़ा बनाना सीखा। 'अ'.ऽऽ... 'आ'...ऽऽ...। माँ ने विद्या को अपनी गोदी में उठाकर चुंबन किया एवं कहा सचमुच तू एक दिन छोटे से बहुत बड़ा बनेगा।

बालक विद्याधर की लगन थी, बड़े बनने की। साथ-साथ माँ-पिता का आशीष एवं उनका भाग्य इसलिए कारणों की समग्रता से आज आचार्य विद्यासागरजी महाराज निस्परिग्रह होकर भी संसार के बड़े.... सबसे बड़े संत हैं।